भक्तिकालीन बाज़ारवाद और भक्ति

मनीष पटेल
शोद्य छात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

www.shodhshree.com

शोध सारांश

भारतीय मध्यकालीन समाज और संस्कृति की समझ रखने और समझने की कोशिश करने वाले हरेक अध्येता की नज़र इस ओर जाती है कि बाज़ार भक्तिकालीन कवियों के बात करने का एक ख़ास बिन्दु रहा है। जहाँ ये कवि बाज़ार को सबसे अधिक जनतांत्रिक जगह के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं, चाहे वे कबीर रहे हो रैदास हो या फिर तुलसी। ये कवि हमें होशियार भी करते हैं कि बाज़ार में सारी भौतिक चीजें बिक रही हैं आप उन्हें खरीद सकते हैं मगर प्रेम आप नहीं खरीद सकते। ये कवि प्रेम की लगातार वक़ालत करते है। इनके पास दुनिया को खूबसूरत बनाने का एक ही रास्ता है– प्रेम। वे बताते हैं कि कैसे ये भौतिक चीजें मनुष्य के प्रेम को ब्रह्म यानी ज्ञान या मानवता के रास्ते में रोड़ा बन जाती हैं। साथ ही कैसे भौतिक चीज़ें आज अपनी पाँव तेजी से पसारती जा रही हैं।

संकेताक्षर : *भक्ति, बाज़ारवाद,माया, लोक, भक्ति–आन्दोलन।*

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल एक ऐसा कोना है जब भक्ति को एक आन्दोलन की संज्ञा दी गई। वैसे तो भक्ति किसी पर निर्भरता को दिखाता है लेकिन इस समय भक्ति एक विचार बन गया था। जहाँ आन्दोलन में तर्क प्रधान होता है वहीं भक्ति में भावना लेकिन, इस समय लोग खुद पर निर्भर होने लगे। इस काल में अधिकतर लोग अपने लिए भोजन और कपड़े खुद से तैयार करते थें। यहाँ लोगों में व्यापार की भावना तेजी से बढ़ी। वे कपड़े तथा खाने–पीने की चीजें बाज़ार में बेचने के लिए जानवरों पर लादकर ले जाने लगे। इस बढ़ते बाज़ारवाद ने भक्ति को भी बीच चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया। इस वक़्त तक बाजार अक्सर किसी मंदिर, मस्जिद, चर्च या नदी के किनारे लगा करते थे, धीरे–धीरे लोगो ने प्रतिदिन घर आने–जाने से बचने के लिए रात को वहीं रूकना शुरू कर दिया, इन बाजारों की खास बात यह भी होती थी कि यहाँ व्यापार के साथ–साथ लोककला, नृत्य, जादू–टोना और झाड़–फूँक करने वाले भी होते थे। यह बाजार स्थानीय लोगों के द्वारा ही नहीं वहाँ के शासकों और दिग्गजों द्वारा संचालित किए जाते थें। बाजार का रूप ज्यों–ज्यों बड़ा होता गया त्यों–त्यों दूर से भी व्यापारी अपने सामानों को लेकर आने लगे तथा दूर के ग्राहकों को भी वे आकर्षित करने लगे। यही विक्रेता एक बाज़ार से दूसरे बाज़ार की यात्रा करने लगे। इतना ही नहीं अन्त में इनमें मनोरंजन और पशुओं के प्रदर्शन भी जुड़ गये।

मध्यकाल में बाज़ार मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं तक ही सीमित था। अकबर ने अपने शासनकाल में महिलाओं के लिए अलग बाज़ार खुलवायें जिन्हें मीना बाज़ार के नाम से जाना जाता था, जिसके सन्दर्भ में सुधा मित्तल ने लिखा है कि,''मीना बाज़ार को लेकर रूढ़िवादी हिन्दुओं ने अकबर की नीयत पर आलोचनात्मक वार किए थे। 'आईने अकबरी' के अनुसार, यह बाज़ार हर महीने के तीसरे दिन आगरा के किले में लगता था। यह जनाना बाज़ार था। जिस दिन यह लगता था उस दिन को 'खुशरोज' कहा जाता था। वास्तव में अकबर चाहता था कि स्त्रियाँ भी आज़ाद हों, खुलकर मिलें–जुलें। इसलिए बाज़ार में बेचनेवाली और खरीदनेवाली औरतें ही होती थीं। कभी–कभी बादशाह और अमीर भी इसकी सैर करते थें।'' इससे

पता चलता है कि महिलाओं की स्थिति ठीक थी और वे आत्मनिर्भर भी थीं।

इस समय मेले बाज़ार की तुलना में बड़े होते थें। बाज़ार की अपेक्षा मेले उस वक़्त भी कम लगते थे। इसमें पैदल या घोड़े पर सामान लादकर लोग बहुत दूर तक आते थें। मेले में कीमती धातुएँ, पत्थर, सिल्क, मसाले और इत्र भी बिकते थें। इसके अलावा यहाँ मनोरंजन के साधनों की भी विविधता थी। कलाबाज, बाजीगर, आग खाने वाले और तलवारबाजी करने वाले भी आते थें। कुश्ती और शक्ति प्रतियोगिताओं के साथ गायक और संगीतकार भी इन मेलों में आते थें।

मध्यकाल में बाज़ार और मेले में पूजा अर्चना करने का भी स्थान होता था, जहाँ संत और भक्त आते थे। वहाँ उपदेश और प्रवचन भी दिए जाते थे और लोग बैठकर चाव से सुनते थें। भक्त वही हो सकता है जिसने अहंकार पर विजय प्राप्त कर लिया हो। एक सच्चा भक्त अपने को दीन, मलीन, गरीब, अनाथ, गुण–विहीन, छली, हीन, तुच्छ, अपराध का सागर, पराधीन, कायर और आलसी जैसे तमाम न जाने कितने दुगुर्णों से परिपूर्ण मानता है, और यही एक सच्चे भक्त के लक्षण भी हैं। मध्यकालीन कवियों के यहाँ ये सारे लक्षण मौजूद हैं। तभी तो तुलसीदास ने उन सभी विषयों को त्यागने के लिए मन को दृढ़ किया है जो राम–भक्ति के प्रतिकूल पड़ते हैं। और वह कहते हैं कि–

कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागी है।

– विनयपत्रिका, पृष्ठ संख्याः 225

मध्यकाल में बाज़ार जनसमूह के मिलन का केन्द्र होता था। उसका सम्बन्ध हमारी सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ था। कबीर अपनी इसी सांस्कृतिक विरासत के साथ हमारे साथ आते हैं। वह अपनी विद्रोही चेतना को बाजार में लेकर जाते हैं, कबीर पुरानी मान्यताओं की निंदा करते हैं। तभी वह कहते हैं–

कबीरा खड़ा बज़ार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।

– कबीर ग्रंथावली

कबीर धर्म, जाति, सम्प्रदाय और वर्ण से परे सच्ची इंसानियत की बात करते हैं तभी ''कबीर समझौते का रास्ता छोड़कर विद्रोह का रास्ता अपनाते हुए निर्गुण भक्ति की जो धारा भक्ति–आन्दोलन की स्रोतस्विनी से फूटी, कबीर उसकी सबसे ऊँची लहर के साथ सामने आए। ...विद्रोह और क्रान्ति की ज्वाला उनकी रग–रग में व्याप्त थी। सिर पर कफन बाँधकर, अपना घर फूँककर वे अलख जगाने निकले थे। वे लुकाठी लिए सरे बाजार गुहार लगा रहे थे।'' इस काल में महिलाओं के लिए चरखा चलाने का काम प्रमुख माना जाता था। जिसके सन्दर्भ में इरफान हबीब ने बताया है कि, ''औरत (वही) अच्छी है जो हर समय चरखा चलाती रहे, क्योंकि उच्च पद उसे अपने उद्देश्य से विमुख करता है। ...इस सन्दर्भ से पता लगता है कि चौदहवीं शताब्दी के मध्य में भारत में चरखा औरतों का काम करने का एक सामान्य उपकरण था।'' कामकाजी महिलाओं की स्थिति समाज में बेहतर थी।

कबीर बाज़ार को सभी भावनाओं से परे एक अलग दुनिया मानते हैं। तभी वह कहते हैं कि–

कबीरा खड़ा बज़ार में सबकी मांगे खैर,
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।

– कबीर ग्रंथावली

वहीं मध्यकाल के एक अन्य कवि मलूकदास ने आलसियों के लिए कुछ न करने वाला दोहा लिखा और उनके सामने जानवरों और पशु पक्षियों के उदाहरण प्रस्तुत किए तथा राम के भजन को सर्वोपरि माना। यदि बाज़ार का सम्बन्ध श्रम से है तो मलूकदास ने भी एक अलग नज़र से बाज़ार को देखने के लिए बाध्य किया और कहीं न कहीं उसकी निर्भरता को कम किया।बाज़ार के संबंध में कबीर की नजर इतनी पैनी की उनसे कुछ भी नहीं छूटता। बाजार में जीवन के सभी भौतिक संसाधन मौजूद हैं लेकिन जीवन का सार तत्व प्रेम बाजार में नहीं है। जिसकी चिन्ता जताते हुए कबीर कहते हैं कि–

प्रेम न बाड़ी ऊपजैए प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचौए सीस देइ ले जाय।।

वही तुलसीदास ने मध्यकालीन जनता की स्थिति उसकी दरिद्रता, उसके रोग, दुःख–शोक के बीच राम को स्थित किया है।तुलसीदास का युगीन सन्दर्भ यह है कि पेट के लिए अपने बेटा–बेटी को बेचनेवाली इस मूर्ख दरिद्र और रुग्ण जनता से उन्होंने राम को जोड़ दिया। तुलसी ने भक्त को बाज़ार से जो संसारिक मोह माया का प्रतीक था उससे काटकर उसे लोकोन्मुखी बना दिया।

''ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।

तुलसी बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें,
आगि बड़ावगि तें बड़ी है आगि पेट की।''

– अनभै साँचा

तुलसी और कबीर के बाज़ार में यही मूलभूत अन्तर दिखाई पड़ता है।

जैन कवि बनारसीदास का बाज़ार इस सब से अलग जान पड़ता है जब वे अपने आत्मचरित में संवत् 1660 के आसपास अपनी इश्कबाजी वाली जीवनचर्या का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उस समय मैं हाट बाज़ार जाना छोड़, घर में पड़े पड़े 'मृगावती' और 'मधुमालती' नाम की पोथियाँ पढ़ा करता था–

''तब घर में बैठे रहैं, नाहिंन हाट बाजार।
मधुमालती, मृगावती पोथी दोष उचार।।''

इससे जान पड़ता है कि, बाज़ार लोगों की दिनचर्या का हिस्सा था, और उनकी उस पर निर्भरता बहुत ज्यादा थी।

जायसी लोक के कवि हैं और उनके यहाँ कविता में आत्मा और परम सत्ता के प्रति एक रहास्यात्मक जुड़ाव है। जायसी के यहाँ कविता बहुत वैयक्तिक है, इसीलिए वो काव्य को बाज़ार में लेकर नहीं जाते हैं।

झिलमिल झगरा झूलते बाकी रही न काहु।
गोरख अटके कालपुर कौन कहावै साहु ?
बहुत दिवस तम हिंडिया सुन्नि समाधि लगाइ।
करहा पड़िया गाड़ में दूरि परा पछिताइ।।

आधुनिक बाजारवाद के सन्दर्भ में जर्मन चिन्तक हर्मन हेस (Hermann Hesse) कहते हैं कि, ''लालच की आँख चीजों को देखने के हमारे कोण को बदल देती है। यदि मैं जंगल को इस नीयत और इरादे से देखूँ की मैं जंगल को खरीद लूँ या किराए पर उठा दूँ या फिर उसे कटवा कर महँगे दामों में बाजार में बेच दूँ तो फिर मैं एक जंगल को नहीं देख रहा, बल्कि मैं जंगल को अपने निहित प्रयोजन या जेब के हवाले से देख रहा हूँ। जंगल को देखते हुए मेरे मन में यदि इस तरह की कोई ख्वाहिश पैदा होती है तो फिर जंगल मेरे लिए वनस्पतियों का जीता जागता संसार नहीं रह जाता बल्कि एक कारोबारी मंजर भर रह जाता है।'' यह बात किसी उत्पाद, मानव सम्बन्ध, साहित्य या जीवन से जुड़ी किसी भी चीज से हो सकती है। आवश्यकता से आगे लोभ तथा लालच की नजरिए से देखा जाना तथा संवेदनशीलता का समाप्त हो जाना ही बाज़ारवाद हैं। इसीलिए कबीर बार–बार बाज़ार को मोह माया का असीम सागर बताते हैं।

इन सब से इतर हम देखते हैं कि भूमंडलीकरण का सीधा संबंध बाज़ारवाद से है, और बाज़ार का भाषा से, यही कारण है कि भूमंडलीकरण की भाषा का प्रसार हो रहा है तथा मातृभाषाएँ या क्षेत्रीय बोलियों का दायरा सिकुड़ रहा है। बाज़ारवाद ने हमारी लोकपरंपरा व संस्कृति को बहुत प्रभावित किया, उसी का प्रभाव है कि आज 'ठंडा मतलब कोका कोला' हो गया है। बाज़ार ने लोगों में एक भ्रम और डर की भावना पैदा कर दी है उसने घरेलू वस्तुओं या उत्पादों को बेकार करार दिया है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है कि बाज़ार ने प्राकृतिक संसाधन पानी के बारे में यह दुष्प्रचार कर दिया है कि, नल और कुओं का पानी बेकार है जिससे बोतल बंद पानी की धढ़ल्ले से बिक्री शुरू हो गयी। हमारे ऊपर बाज़ार इतना हावी हो गया है कि विज्ञापनों की भाषा हमें सच्ची लगने लगी है हमने ख़ुद से सोचना बंद कर दिया है यानी हम बाज़ार के गुलाम बन गए हैं। बाज़ार का कब्जा व्यक्ति के मानसिक संतुलन तक पहुँच गया है।

बाज़ारवाद से ही उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला है। उपभोग और उत्पाद की अवधारणा हमेशा से विद्यमान रही है, किन्तु उसके स्वरूप में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आरंभ में मनुष्य कंदमूल फल खोजकर इकट्ठा कर खाने तथा जीव–जन्तुओं का शिकार कर अपना भोजन जुटाता था इस प्रक्रिया को उत्पादन कहा गया। तत्पश्चात् उत्पादन का स्वरूप बदला और कृषि एवं पशुपालन प्रमुख हो गए। साथ ही साथ उपभोग में भी बदलाव आया, अब वे प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं का ज्यों का त्यों सेवन करने के बदले उसे पकाकर और नमक आदि के साथ खाने लगे इस प्रकार उत्पादन का पैमाना, चरित्र और स्वरूप उपभोग के अनुकूल बनाने के लिए बदले। इस प्रकार उपभोग सर्जनात्मकता का स्रोत और सामाजिक संबंधों तथा पहचान का आधार बन गया। अब लोगों को एक दूसरे पर निर्भर होना पड़ता था फिर उपभोग के साथ ग्राहक की अवधारणा का जन्म हुआ। 20वीं सदी के मध्य से उपभोग और उपभोक्ता शब्द अर्थशास्त्र की सीमा से बाहर निकलकर आम बोलचाल में आ गया। अब ग्राहक के बदले उपभोक्ता शब्द का प्रयोग होने लगा। रेमंड विलियम्स ने लिखा है कि, ''ग्राहक कहने से आपूर्तिकर्ता के साथ उसका नियमित सम्बन्ध व्यक्त होता है जबकि उपभोक्ता शब्द अपेक्षाकृत अमूर्त बाज़ार में एक निराकार व्यक्तित्व का बोध कराता है।'' उपभोक्ता संस्कृति के फलने–फूलने से गाँव के

सीधे–सादे लोग साधनों की कमी के बावजूद कैप्टन कुक आटा, टाटा नमक, रिन डिटर्जेंट, किन्ले और बिस्लेरी का पानी, अंकल चिप्स, मैगी और हॉट डॉग तक खाने लगे हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह साफ है कि मध्यकाल में बाजार के कई रंग थें। इस काल के कवियों ने बाज़ार को अपने हिसाब से पारिभाषित भी किया है। जहाँ बाज़ार कबीर के लिए माया है वहीं तुलसी के लिए लोक का प्रतीक। यह महिलाओं की आज़ादी का केन्द्र भी था और मध्यकाल की जड़ता के खिलाफ भी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *दास, श्याम सुन्दर (सं.) (2016), कबीर ग्रंथावली, नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान।*
2. *मित्तल, सुधा (2006), हिन्दी कथा–साहित्य में मध्यकालीन भारत,नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. : 65–66*
3. *मिश्र, शिवकुमार (2005), भक्ति–आन्दोलन और भक्तिकाव्य, इलाहाबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृष्ठ सं. : 56–57*
4. *हबीब, इरफान (सं.)(2012),मध्यकालीन भारत–1, प्रौद्योगिकीय परिर्वतन और समाज,नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. : 25*
5. *शुक्ल, रामचन्द्र (2003), हिन्दी साहित्य का इतिहास,वाराणसी : नागरीप्रचारिणी सभा, पृष्ठ सं. : 54*
6. *मिश्र, गिरिश(2013), उपभोक्तावाद की पृष्ठभूमि, [Online web] Accssed 26th Feb. 2016 URL : http://www.deshbandhu.co.in/newsdetail/3856/10/0*
7. *फारुकी, अमर (2003), प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएँ और संस्कृतियाँ, अनुवाद द्वारा शाहिद अख्तर, दिल्ली : प्रन्थ शिल्पी।*
8. *मुक्तिबोध, गजानन माधव (1999), नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन।*
9. *द्विवेदी, हजारी प्रसाद (1970), मध्यकालीन धर्म साधना, इलाहाबाद : साहित्य प्रकाशन।*
10. *सिंह, गोपेश्वर (संपादक) (2002), भक्ति आन्दोलन के सामाजिक आधार, नयी दिल्ली : भारतीय प्रकाशन संस्थान।*
11. *मिश्र, भगीरथ (1973), महाकवि तुलसीदास और युग सन्दर्भ, इलाहाबाद : साहित्य भवन।*